4

यीशु कब कहां और कैसे रहा?

सुसमाचार के वृत्तांतों में यीशु की कहानी का आरम्भ यह कहते हुए नहीं होता कि ''एक बार की बात है, यीशु नाम का एक आदमी था।'' समय और स्थान में वास्तव में रहने वाले किसी व्यक्ति के बजाय बहुत से लोग उसे ऐसा ही सोचते हैं, परन्तु सुसमाचार के वृत्तांत ऐसा नहीं कहते। यीशु के जीवन और सेवकाई की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लूका के प्रभावशाली प्रभाव पर ध्यान दें।

> तिबिरियुस कैसर के राज्य के पंद्रहवें वर्ष में जब पुन्तियुस पीलातुस यहूदियों का हाकिम था, और गलील में हेरोदेस ना चौथाई का इतूरैया, और त्रखोनीतिस में, उसका भाई फिलिप्पुस, और अबिलेने में लिसानियास चौथाई के राजा थे। और जब हन्ना और कैफा महायाजक थे, उस समय परमेश्वर का वचन जंगल में जकरयाह के पुत्र यूहन्ना के पास पहुंचा (लूका 3:1, 2)।

लूका ने रोम के सम्राट यहूदिया के हाकिम, फलस्तीन के विभिन्न भागों की चौथाइयों (''चौथे भाग के हाकिम'') और उस समय जब यूहन्ना और यीशू ने अपनी अपनी सेवकाई आरम्भ की, के हाकिम और उनसे तुरन्त पहले के यहूदियों के प्रधान याजकों के नाम दिए। इसी प्रकार मत्ती कहता है कि यीशु का जन्म ''हेरोदेस राजा के दिनों में'' यहूदियों के बैतलहम में हुआ (मत्ती 2:1)। मत्ती और लूका की सूचियों में दिए गए सभी इलाके नये नियम के बाहरी स्रोतों के इतिहासकारों को मालूम थे और उनकी तिथियों को उपलब्ध जानकारी से तर्कसंगत रूप में ठहराया जा सकता है। यह तुरन्त स्पष्ट हो जाता है कि सुसमाचार के लेखक इतिहास में एक विशेष समय और स्थान में यीशु के जीवन को बताना चाहते हैं। वह समय कब था और वह स्थान कहां था?

वह कब संसार में रहा?

हमारी और यीशु के बीच समय के बहुत बड़े अंतराल के बावजूद, हम यदि *सही-सही* वर्षों पर ज़ोर न दें तो निश्चित रूप से तर्कसंगत ढंग से उसके जीवन की तिथियों में से कुछ निर्धारित कर सकते हैं। आइए उसके जन्म के साथ आरम्भ करते हैं।

मत्ती 2:1 कहता है कि यीशु का जन्म ''हेरोदेस राजा के दिनों में'' हुआ (देखें लूका 1:5)। बेशक यीशु के पूरे जीवन काल और उसके बाद की कई सदियों तक रोम का पूरा नियन्त्रण था पर रोमी लोग यहूदियों को अपने लिए ''कठपुतली राजा'' यानी ऐसे हाकिम रखने की अनुमति देते थे, जो रोम द्वारा चुने गए हों और जिनका सबसे बड़ा उद्देश्य रोमी साम्राज्य की रूचियों का ध्यान रखना है। नये नियम में पांच ''हेरोदेसों'' का उल्लेख है, क्योंकि ''हेरोदेस'' एक व्यक्तिगत नाम ही नहीं, बल्कि एक बहुत बड़ा पद था।[1]

वह हेरोदेस जिसका शासन यीशु के जन्म के समय था ''हेरोदेस महान'' के नाम से प्रसिद्ध है। हम उसके बारे में काफ़ी कुछ जानते हैं। अधिकतर (जोसेफ़स से), और वह एक दिलचस्प व्यक्ति था। वह एक क्रूर, अंधविश्वासी तानाशाह जो उसकी गद्दी के लिए खतरा लगने वाले किसी भी व्यक्ति को मार देता था। इसका प्रमाण मत्ती 2:16-18 में दर्ज़ ''निर्दोषों की हत्या'' से मिलता है जिसकी पुष्टि बाइबल से बाहर के लेखक नहीं करते पर यह पूरी तरह से उससे मेल खाती है जो हम हेरोदेस के चरित्र के विषय में जानते हैं। तो फिर उसे ''महान'' क्यों कहा गया? वह एक बहुत ही योग्य प्रबन्धक था जो रोमियों के साथ बहुत अच्छी तरह चला (बहुत अच्छी तरह से, उसके बहुत से यहूदी समकालीन ऐसा ही सोचते थे) और जिसने कई प्रभावशाली भवन निर्माण के कार्यों को पूरा किया। इन में से सबसे महत्वपूर्ण यरूशलेम के मन्दिर की पूरी मरमत और विस्तार था, जिसे उसने इमारतों के एक शानदार कॉम्पलेक्स और साथ के भवनों में बदल दिया। (यह कार्य आरम्भ हुआ, पर उसके अपने शासन के दौरान पूरा नहीं हो पाया।)यह सब हमें यीशु के जन्म की तिथि में धारण करने में कैसे सहायता करता है? जोसेफ़स ने कहा कि हेरोदेस महान ने 37 ई.पू. से 4 ई.पू. तक शासन किया, और नया नियम बताता है कि यीशु का जन्म हेरोदेसे के शासन के समय हुआ। ''B.C.'' या ''ई.पू.'' (''मसीह से पूर्व'' या ''ईस्वी पूर्व'') वाला भाग एक समस्या है कि यह यीशु का जन्म ''बी.सी.'' यानी ''ई.पू.'' में हुआ! हमारे कैलेंडरों में एक खामी है। उनकी गणना यीशु के जन्म से की जानी चाहिए परन्तु दैनिस छोटे (वह भिक्षु जिसने हमारा कैलेंडर इजाद किया) ने एक छोटी सी गलती कर दी। जब उसकी समीक्षा की जाती है तो यह यीशु का जन्म 4 ई.पू. में या इससे पूर्व बनता है जबकि हेरोदेस महान उस समय भी जीवित था और शासन कर रहा था।

मत्ती 2:16-18 को ध्यान से देखें (जब हेरोदेस ने यीशु को नष्ट करने की उम्मीद से बैतलहम के सभी नर बच्चों को मरवा दिया था)। इस घटना के समय यीशु लगभग 2 साल का होगा। हेरोदेस को लगा कि वह ''ज्योतिषियों द्वारा ठीक-ठीक बताए गए समय के अनुसार बैतलहम और उसके आस-पास के स्थानों पर सब लड़कों को जो दो वर्ष के या उससे छोटे थे'' मरवाकर नव जन्मे राजा को खत्म का देगा। उसने इसका पूरा हिसाब लगवाया था, सो हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि यीशु दो साल के करीब का होगा, परन्तु हो सकता है कि इससे थोड़ा छोटा हो। इस सब को मिलाने पर अधिकतर विद्वान यीशु के जन्म की गणना 7-5 ई.पू. के बीच की मांग करती है।

यीशु के जन्म की तिथि निर्धारित करने का हमारा अगला हवाला उसकी सार्वजनिक सेवकाई के आरम्भ की है। यहां हमें सुसमाचार के वृत्तांतों में से सीधे कुछ सहायता मिलती है। लूका 3:23 कहता है कि यीशु ''लगभग 30 वर्ष की आयु का था'' जब उसने अपनी सेवकाई आरम्भ की। लूका की बात उतनी स्पष्ट नहीं है जितनी हमें लग सकती है (यीशु 28 का? 30 का? 32का? था), पर यह फिर भी सहायक है। स्पष्टतया सुसमाचार के वृत्तांतों में जो पता चलता है उससे यही कह सकते हैं कि यीशु अपने सम्बन्ध यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले के हाथों बपतिस्मा लिए जाने के लिए सामने आने तक गुमनामी में रहा। यूहन्ना की गतिविधि को ''तिब्रयुस कैसर के राज्य के पन्द्रहवें वर्ष में'' बताता है, जो लगभग 27-28 ईस्वी के पास मिला होगा। यह बड़ी अच्छी तरह से उससे मेल खाता है, जो हमने पहले कहा था कि यीशु का जन्म

7 और 5 ई.पू. के बीच में हुआ और जब उसने अपनी सार्वजनिक सेवकाई आरम्भ की तब वह ''लगभग 30'' का था (लगभग उसी समय जब यूहन्ना ने अपनी सेवकाई आरम्भ की)।

हम यीशु की सेवकाई की लगभग लम्बाई की गणना करके हम इससे भी आगे बढ़ सकते हैं। उसकी सार्वजनिक सेवकाई का अंक उसकी मृत्यु के साथ हुआ इसलिए हमें यह पता चल जाएगा कि यदि हम किसी भी तर्कसंगत निश्चितता के साथ उसकी सेवकाई की अवधि निर्धारित कर सकें, जो कि हम कर सकते हैं तो हम जान जाएंगे कि उसकी मृत्यु कब हुई और उसकी लगभग उम्र क्या थी।

ऐसा हम इस बात पर ध्यान देकर करते हैं कि सुसमाचार के वृत्तांत किनती बार कहते हैं कि वह फसह के पर्व को मानाने के लिए यरूशलेम में गया, जो यहूदी वर्ष के सबसे महत्वपूर्ण पर्व के दिनों में से एक था। सुसमाचार के हर सहदर्शी वृत्तांत (मत्ती, मरकुस और लूका) में केवल उसी फसह का उल्लेख है, जिस में यरूशलेम में यीशु ने भाग लिया था, जिस दौरान उसे क्रूस पर चढ़ाया गया था। यदि हमें केवल उन्हीं से पता चलता तो हम यह निष्कर्ष निकाल सकते थे कि यीशु की सार्वजनिक सेवकाई (यानी उसके बपतिस्मे और जंगल में उसकी परीक्षाओं के समय से लेकर उसकी मृत्यु तक) केवल एक वर्ष या शायद उससे भी कम थी। परन्तु सुसमाचार का यूहन्ना का वृत्तांत दो से तीन वर्ष की सेवकाई का सुझाव देता है, क्योंकि इसमें तीन अलग-अलग अवसरों पर यीशु के फसह मनाने के लिए यरूशलेम में जाने की बात है (यूहन्ना 1:13; 6:4; 11:55)। इसमें कम से कम दो या तीन वर्ष का समय हो सकता है। यदि सार्वजनिक सेवकाई का आरम्भ 27-28 ईस्वी में हुआ, जैसा कि हम ने पहले निष्कर्ष निकाला था, तो यीशु की मृत्यु 30 ईस्वी के लगभग मरा। यह यीशु तथा उसके द्वारा आरम्भ की गई लहर (अर्थात कलीसिया) के विषय में सांसारिक स्रोतों (यानी वे स्रोत जो बाइबल में नहीं हैं) के साथ मेल खाता है।

''यीशु संसार में कब रहा?'' प्रश्न के उत्तर में हम आसानी से यह उत्तर दे सकते हैं कि उसका जन्म लगभग 7-5 ई.पू. में हुआ, उसकी सेवकाई लगभग 27-28 ईस्वी में आरम्भ हुई और वह लगभग 30 ईस्वी में मरा। 2000 वर्ष पूर्व हुई किसी बात के लिए ये गणनाएं बहुत नज़दीक हैं!

वह कहां रहा?

नया नियम इस बात का व्यापक प्रमाण (अन्य स्रोतों की तरह) देता है कि यीशु उस देश में जिसे फलस्तीन कहा जाता है, रहा और मरा। इस क्षेत्र का इतिहास आम तौर पर त्रासदियों से भरा होने के बावजूद लम्बा और समृद्ध था। यह प्रतिज्ञा किया हुआ वही देश था जिसे परमेश्वर ने इस्राएल को लोगों को, उनके ''इस्राएली'' कहलाने से भी पहले कहा था कि वह उन को देगा। मिस्र की दासता से उनके निकलने के बाद परमेश्वर उन के अविश्वास के कारण उन्हें चालीस साल तक जंगल में घुमाता रहा। वे परमेश्वर की प्रतिज्ञा को चालीस साल पहले पा सकते थे! (देखें गिनती 13; 14.) अन्त में वे प्रतिज्ञा किए हुए देश में यरदन नदी पार करके जा पाए। उस समय इसे ''कनान'' कहा जाता था और उसमें रहने वालों को ''कनानी'' कहा जाता था। इस्राएलियों को इस देश में कब्जा करने पर यह ''इस्राएल'' के नाम से प्रसिद्ध हो गया। बाद में रोमियों ने इसे ''फलस्तीन'' नाम दे दिया और आज भी इसे बाद वाले इन दोनों नामों से

जाना जाता है।[2]

फलस्तीन एक छोटा सा देश है। यीशु के समय में इसका आकार मेरी लैंड राज्य जितना या तोगो के अफरीकी देश का आधा था। इस्राएलियों के इस पर कब्जा कर लेने के बाद देश का इतिहास यदि हमेशा महिमायुक्त नहीं तो दिलचस्प अवश्य था। मैसोपोटामिया (जहां अश्शूर, बाबुल और फारस के राज्य थे) और मिस्र के बीच स्थित, फलस्तीन अपने छोटे आकार के बावजूद एक पसन्दीदा इलाका था। महाशक्तियों के बीच के सैनिक अभियानों ने फलस्तीन के नियन्त्रण को बड़ा महत्वपूर्ण बना दिया। आम तौर पर यह दूर-दूर की शक्तियों के बीच का ''छोटा राज्य'' होता था। अपने पहले तीन राजाओं (शाऊल, दाऊद, और सुलेमान) के शासनों के दौरान इसे पूरी सामर्थ और राजनैतिक स्वतन्त्रता थी, परन्तु उसके बाद यह काफ़ी कमज़ोर हो गया। इसके बावजूद इस क्षेत्र के नियन्त्रण का इतना नीतिगत महत्व होने के कारण हमेशा यह किसी विदेशी शक्ति के अधिकार में रहा।

यीशु के समय में इस पर शासन करने वाली विदेशी शक्ति रोम था, जिसने 63 ई.पू. में फलस्तीन पर कब्जा किया और नये नियम के पूरे युग तथा उसके बाद भी इस पर नियन्त्रण रखा। अश्शूरियों, बाबुलवासियों, फारसियों, यूनानियों और रोमियों ने इस अभागे देश को एक के बाद एक अपने कब्जे में लिया। यूहन्ना 8:33 में कुछ यहूदियों की बात कि ''हम तो अब्राहम के वंश से हैं, और कभी किसी के दास नहीं हुए'' का अर्थ इतिहास की कीमत पर राष्ट्रीय गर्व के प्रतीक के रूप में लिया जा सकता है। वास्तव में वे लगभग हर किसी के दास थे! यह बात कहने के समय भी वे आज़ाद नहीं थे। रोमियों का नियन्त्रण पूरी तरह से था। उन्होंने हेरोदेसों को ''कठपुतली राजाओं'' को शासन करने की अनुमति दे रखी थी। हेरोदेस अपने आप में विशुद्ध यहूदी नहीं बल्कि याकूब (जिसका दूसरा नाम ''इस्राएल'' था) के जुड़वां भाई ऐसाव की संतान यानी ऐदोमी थे। यहूदी लोग ऐदोमियों को तुच्छ मानते थे। इसलिए जब यीशु का जन्म हुआ उस समय फलस्तीन में यहूदी होने की स्थिति राजनैतिक और आत्मिक रूप में बड़ी गड़बड़ वाली थी। यही संसार था जिसमें यीशु पैदा हुआ और जिसमें वह मरा।

यीशु के जन्म के स्थान पर हम इससे भी और बारीकी में जा सकते हैं। मत्ती और मरकुस दोनों उस घटनास्थल का नाम बैतलहम नगर बताते हैं जो यरूशलेम के दक्षिण में लगभग पांच मील था (मत्ती 2:1; लूका 2:1-7)। परन्तु बाद में यीशु ''गलीली'' कहलाने लगा और गलील फलस्तीन के दूर उत्तरी भाग में है। वह दक्षिण में बैतलहम में क्यों पैदा हुआ? लूका इसका कारण बताता है। जनगणना के कारण जिसमें अपने-अपने पूर्वजों के गांव में हर किसी का नाम लिखना आवश्यक था-केवल गिनती के लिए नहीं बल्कि कर लगाए जाने के लिए भी। यीशु के माता-पिता मरियम और यूसुफ नासरत में अपने गलील के घर से बैतलहम में दूर तक चलकर गए। लूका के अनुसार यूसुफ ''दाऊद के घराने और उनके परिवार का था'' जिस कारण उसे ''दाऊद के नगर'' बैतलहम में अपना नाम लिखवाना था। अपने पीछे वह अपनी गर्भवती पत्नी को छोड़कर नहीं जाना चाहता था, जिस कारण वे दोनों इस कठिन सफ़र में चले गए और वहीं इसी का जन्म हुआ। यूसुफ और उसके परिवार की सभी गतिविधियों को स्पष्ट नहीं बताया गया। लूका 2:39 केवल इतना बताता है कि यरूशलेम के मन्दिर में यीशु के समर्पण के बाद, जो उसे चालीस दिन का हो जाने पर हुआ होगा (देखें लैव्यव्यवस्था 12:1-6), ''वे गलील में

अपने नगर नासरत को फिर चले गए।'' परन्तु मत्ती 2:13-23 कहता है कि यीशु के जन्म के बाद किसी समय हेरोदेस को बालक यीशु की हत्या करने से रोकने से स्वप्न में मिस्र में भाग जाने की चेतावनी दी गई। एक के बाद एक ईश्वरीय हस्तक्षेपों के द्वारा अन्त में वह अपने ग्रह नगर नासरत में लौट गए। बहुत अधिक सम्भावना है कि यह ''मिस्र में जाना'' लूका 2 वाली घटनाओं के बाद में हुआ। वह जब भी हुआ हो पर यीशु का पालन पोषण नासरत में ही हुआ (लूका 4:16)।

वह कैसे रहा

हमें यीशु की वंशावली की काफ़ी जानकारी है, क्योंकि मत्ती 1 और लूका 3 हमें उसकी विस्तृत वंशावली का विवरण देते हैं। यहूदी समाज में किसी के कानूनी और आत्मिक विरासत को साबित करने के लिए वंशावलियों का बहुत महत्व था, और पुराने नियम में कई वंशावलियां दी गई हैं। वास्तव में मत्ती के लिए यीशु की वंशावली का महत्व इतना अधिक था कि उसने सुसमाचार के अपने विवरण का आरम्भ ही इसके साथ किया। नामों की सूची को पढ़ना हमारे लिए कठिन हो सकता है; परन्तु पहली सदी के यहूदी के लिए पुराने नियम से नामों की सूची पढ़ना जो यीशु के जन्म तक ले जाते हों किसी परिवार की एलबम में फोटो देखने की तरह होगा जिसमें हर नाम पढ़ने से दिमाग में यहूदी लोगों के लम्बे इतिहास की कुछ कहानी आ जाती है।

मत्ती और लूका की वंशावलियां चाहे एक दूसरे को ढंक लेती हैं पर वे एक दूसरे की नकल बिल्कुल नहीं हैं। मत्ती ''यहूदी लोगों के पिता अब्राहम से आरम्भ करता है और यीशु तक ले जाता है।'' दूसरी ओर लूका यीशु के साथ आरम्भ करता है और बिल्कुल पीछे को आदम तक और फिर स्वयं परमेश्वर तक ले जाता है। इस अन्तर का कारण यह है कि दोनों लेखकों के वंशावलियां देने का उद्देश्य अलग-अलग है। मत्ती यीशु को एक वास्तविक इस्राएली और दाऊद राजा की संतान के रूप में दिखाना चाहता था, जो इस्राएल का मसीहा होने के लिए पूरी तरह से योग्य है। लूका की इससे और ''विश्वव्यापी'' वंशावली यीशु को केवल यहूदी धर्म के साथ नहीं, बल्कि सारी मनुष्य जाति से मिलाती है। सुसमाचार की पुस्तकें दृढ़ता से यहूदी इतिहास में और उसके परिवार में यीशु का स्थान बनाती हैं। यीशु यहूदा के कबीले में से था और इस्राएल के सबसे प्रसिद्ध लोगों में से बल्कि कुछ बदनाम पापियों में से भी था।

यूसुफ और मरियम के बारे में सिवाय इसके कि वे स्पष्ट रूप में सामान्य यहूदी दम्पत्ति थे, सिवाय अपने प्रसिद्ध पुत्र के, अधिक पता नहीं है। यूसुफ़ एक कारोबारी व्यक्ति यानी बढ़ई था (मत्ती 13:55) और यीशु ने सम्भवतया उसी कारोबार को सीखा था। आज भी उसे ''नासरत का बढ़ई'' के रूप में जाना जाता है। जन्म के विवरणों में यूसुफ के बारे में अधिक नहीं बताया गया। (लूका की अपेक्षा मत्ती में अधिक बताया गया है, परन्तु मरकुस में उसका कोई उल्लेख नहीं है।) यूसुफ की यीशु की बाद की कहानी में कोई भूमिका नहीं है। इस कारण यह मान लिया जाता है कि यीशु के व्यस्क होने के समय तक उसकी मृत्यु हो चुकी होगी। बेशक इसकी पुष्टि नहीं की जा सकती।

मत्ती और लूका में वर्णित कुंआरी से जन्म के कारण (या और स्पष्ट कहें ''तो या कुंवारी के गर्भ धारण'') के कारण मरियम स्वभाविक रूप से यूसुफ से अधिक दिलचस्प व्यक्तित्व है। आम तौर पर हम उसे यीशु के जन्म के समय में एक पुरौड़ युवती के रूप में देखते हैं जो लगभग

अपने पति की उम्र जितनी ही है, परन्तु यहूदी लड़कियों की आम तौर पर ''मंगनी की जाती'' और फिर बारह से चौदह साल की उम्र में उनकी शादी की जाती है, बल्कि वह उसके जिब्राइल के दर्शन और घोषणा करने को अलग पहलू में रखता है! किसी अविवाहित लड़की को जिसकी उम्र चौदह साल से अधिक न हो, यह बताए जाने की कल्पना करें कि वह गर्भवती होगी और परमेश्वर के पुत्र को जन्म देगी! स्पष्ट रूप में यह मरियम की पवित्रता और वफ़ादारी की साक्षी ही है कि उसने उत्तर दिया, ''देख, मैं प्रभु की दासी हूं, मुझे तेरे वचन के अनुसार हो'' (लूका 1:38)। यीशु के जन्म के बाद सुसमाचार के विवरणों में मरियम बहुत कम दिखाई देती है। उसे आश्चर्यकर्म करने की कोई शक्ति नहीं दी गई, न ही उसे मसीही विश्वास और आराधना में आगे का कार्य सौंपा गया। उसे एक सराहनीय व्यक्तित्व के रूप में दिखाया गया है, बेशक किसी भी प्रकार से सिद्ध नहीं (देखें मरकुस 3:21, 31-35); परन्तु नया नियम उसे कभी भी किसी भी दूसरी श्रद्धालु मां से बढ़कर नहीं दिखाता।

जहां तक मरियम और यूसुफ़ (और इसलिए यीशु) की आर्थिक परिस्थिति की बात है, हम केवल इतना कह सकते हैं कि वे निम्न श्रेणी का यहूदी परिवार थे। यानी ऐसा परिवार जिसे धार्मिक रूप में अधिक गहराई तक जाने वाले फरीसियों और सदूकियों द्वारा जो यहूदी समाज में शक्ति और प्रभाव वाले लोग थे तिरस्कारपूर्वक ''देश के लोग'' कहा जाता था। हमें कैसे मालूम? एक संकेत लूका 2:22-24 में दिया गया है, जो यीशु को मन्दिर में ले जाने की बात बताता है जब वह बालक ही था। मूसा की व्यवस्था के अनुसार पहलौठे लड़के के माता-पिता के लिए मेम्ने का बलिदान देना आवश्यक था। ''दो पण्डुकी या कबूतरी के दो बच्चों'' का विकल्प उनके लिए दिया गया था जो मेमना नहीं दे सकते थे (देखें लैव्यव्यवस्था 12:6-8) और लूका इस बात का संकेत देता है कि यीशु के लिए छोटी भेंट दी गई थी। इसका अर्थ यह हुआ कि हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि यूसुफ़ और मरियम फलस्तीन में सामाजिक आर्थिक स्तर पर कमज़ोर थे; परन्तु हमें यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि वे नि:सहाय थे। आखिर यूसुफ एक कारोबारी था और यह विश्वास करने का कोई कारण नहीं है कि वह अपने काम से अपने परिवार के लिए प्रयाप्त जीविका न कमा सकता हो।

माता-पिता के अलावा यीशु के भाई और बहनें भी थीं। वह इकलौता बच्चा नहीं था बल्कि बच्चों से भरे घर में पला बड़ा था। सुसमाचार के चारों विवरण बताते हैं कि यीशु के भाई थे (मत्ती 12:46, 47; मरकुस 3:31, 32; लूका 8:19, 20; यूहन्ना 7:1-5)। मत्ती और मरकुस तो उनके नाम भी बताते हैं: याकूब, यूसुफ़, शमौन और यहूदा। यूहन्ना स्पष्टता से कहता है, और मत्ती और मरकुस मज़बूती से इसका संकेत देते हैं कि यीशु के भाई पृथ्वी पर उसके रहने के समय में उसमें विश्वास नहीं लाए थे। मत्ती मरकुस दोनों कहते हैं कि यीशु की बहनें थीं (मत्ती 13:56; मरकुस 6:3), पर उन में से किसी का नाम नहीं दिया गया। प्राचीन यहूदी धर्म में यह विशेष बात थी। नये नियम के प्रमाण के अलावा जोसेफ़स के कथन को याद रखें कि यीशु का याकूब नामक एक भाई था, जिसका उल्लेख इसलिए है क्योंकि उसे यहूदी अधिकारियों के सामने पेश किया गया था। कुछ लोगों ने सुझाव दिया है कि यीशु के भाई और बहने वास्तव में उसके ''चचेरे'' थे या वे यूसुफ़ के किसी दूसरी स्त्री से पहले किए गए विवाह के कारण उसके सौतेले भाई बहन थे (एक ऐसा विचार जिसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है), यह केवल धर्मशास्त्रीय दृष्टि कोण

को बचाने के प्रयास में है जिसे उस प्रमाण से कोई समर्थन नहीं मिलता जो हमारे पास है। ऐसे संकेत हैं कि मरियम और यूसुफ़ का घर बच्चों से भरा था (कम से कम सात, यदि कम से कम दो पहलुओं को मानें), जो एक बच्चे वाले परिवार की अपेक्षा पहली सदी के यहूदी परिवार से अधिक मेल खाता होगा। फिर, प्रमाण का मतलब है।

यीशु की जीवन शैली

यीशु को ''बेघर'' दिखाया गया है, एक बार उसने कहा था कि ''मनुष्य के पुत्र के लिए सिर धरने की जगह भी नहीं है'' (मत्ती 8:20) और क्योंकि सुसमाचार की पुस्तकें बताती हैं कि वह गलील के आस पास घूमता था और यहूदिया के दक्षिणी छोरों में भी कई बार जाता था। परन्तु ऐसे संकेत हैं कि एक से दूसरी जगह पर जाने पर आम तौर पर उसकी जगह पर छत होती थी।

हाल ही में इसके बिल्कुल विपरीत उन लोगों द्वारा जो ''स्वास्थ्य और धन के सुसमाचार'' की (जो लोग कहते हैं कि परमेश्वर चाहता है कि हर कोई धनवान बने) वकालत करते हैं। यीशु विषय में यह दावा किया गया। वह कहते हैं कि यीशु एक धनवान व्यक्ति था और विश्वासियों को धनवान बनने का प्रयास करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं, ये लोग यह मानकर चलते हैं कि यीशु को अपने जन्म के समय में सोना, लुबान और मुर जैसे महंगे उपहार मिले थे (मत्ती 2:11) और क्योंकि उसके पास उसके साथ चलने वाले लोगों के बड़े समूह का ध्यान रखने के पर्याप्त साधन थे, इसलिए वह अवश्य ही एक धनवान व्यक्ति होगा। हमें ऐसा कोई संदेश तो नहीं मिलता कि यीशु निर्धन व्यक्ति था, पर निश्चय ही यह धन की ओर संकेत नहीं है। वास्तव में उसकी शिक्षाएं इस बात को बहुत असम्भव बना देती हैं (मत्ती 8:20; लूका 12:13-21; 16:19-31) और उन लोगों के लिए जो आज धन को अपनी प्राथमिकता बनाते हैं कोई राहत नहीं देती। इसके अलावा यीशु ने अपने साधनों में से प्रेरितों के समुह को कुछ नहीं दिया; लूका 8:1-3 स्पष्ट करता है कि उसके साथ चलने वाली स्त्रियां प्रेरित ''अपनी सम्पत्ति से उसकी सेवा करते थे।''

बेशक यह स्पष्ट करते हुए कि यीशु के बहुत से शत्रु थे, सुसमाचार के वृत्तांतों में यह संकेत है कि उसके मित्र भी काफ़ी अच्छे थे। बारह प्रेरितों ने तीन साल में से अधिकतर समय उसकी संगति में, उसके साथ घुमते और उससे सीखने में बिताया। प्रेरितों 1:15-26 संकेत देता है कि और लोग भी उसके साथ थे, क्योंकि यहूदा के स्थान पर भर्ती करने के योग्य दो लोग यीशु की सार्वजनिक सेवकाई में पूरा समय उसके साथ रहे थे। लूका 8 में वर्णित स्त्रियों के अलावा समय समय पर यीशु के साथ कई लोग घूमते थे। लूका 10:1 सत्तर लोगों के समूह की बात करता है जिन्हें यीशु ने उन नगरों और गांवों में भेजा जिनमें वह जाने वाला था। इन सभी लोगों को यीशु के मित्र कहा जा सकता है।

लूका 10:38-42 यीशु के मरियम और मारथा नामक दो बहनों के घर जाने की बात लिखता है। बाद में यूहन्ना 11 से हमें पता चलता है कि इन दो बहनों का लाज़र नामक एक भाई भी था और यीशु उस से और उसकी दोनों बहनों से ''प्रीति रखता था'' (आयतें 3, 5, 36)। इसका अर्थ यह हुआ कि यीशु चेलों के अलावा लोगों के भी बहुत निकट था। यह जानने का हमारे पास कोई तरीका नहीं है कि यीशु के कितने मित्र थे, परन्तु यह जानना आश्चर्यजनक नहीं है कि

उस जैसे आकर्षण रखने वाले व्यक्ति के कई मित्र हो सकते हैं, विशेषकर तब जब वह यहूदी समाज के सबसे तिरस्कृत भागों में से कइयों में लोगों के मित्र बनाने की लीक से हटकर चला (लूका 15:1, 2; 19:1-10)।

भाषा, शिक्षा, यात्राएं

यीशु के जीवन के शानदार आरम्भ और अन्तिम तीन वर्षों के अपवाद के साथ, हमारे पास इस बात का हर संकेत है कि उसका जीवन बहुत ही सादा था। यह सम्भवतया इस तथ्य से पता चलता है कि सुसमाचार के वृत्तांत उसके दो से लगभग तीस साल के होने तक के बारे में कुछ नहीं बताते (उसके बाहर वर्ष के होने की घटना के अपवाद के साथ)। कई पहलुओं से उसका जीवन एक आम यहूदी जवान जैसा होगा।

पहली सदी के आम यहूदी के रूप में यीशु कौन सी भाषा(एं) बोलता होगा? बिना किसी संदेह के वह अरामी भाषा बोलता था। जो इब्रानी भाषा की उप भाषा थी और फलस्तीन में आम बोली जाती थी। सुसमाचार के विवरण यीशु द्वारा बोले जाने वाले कुछ अरामी शब्दों जैसे *अब्बा* लिखते हैं जो ''हे पिता'' (मरकुस 14:36) के रूप में परमेश्वर को सम्बोधन करने का उसका विशेष ढंग है, और क्रूस पर से उसकी पुकार: *एली, एली, लमा शब्कतनी अर्थात* ''हे मेरे परमेश्वर, हे मेरे परमेश्वर तूने मुझे क्यों छोड़ दिया'' (मत्ती 27:46)। उसका पालन पोषण गलील अर्थात उस इलाके में हुआ, जो यूनानी भाषा बोलने वाली संस्कृति से अत्यधिक प्रभावित था और शफोरिस के यूनानी शैली वाले नगर के भीतर था, बहुत सम्भावना है कि वह कोयनि (ञ्चलासिकल के विपरीत ''साधारण'') यूनानी भाषा ही बोलता था।[3] भूमध्य प्रदेश के आस पास व्यापार और पत्राचार की एक दूसरे देश की भाषा के रूप में यूनानी भाषा का होना उस सम्पूर्णता की गवाही है, जिससे तीन सदियां पहले सिकन्दर महान ने उस क्षेत्र को यूनानी भाषा बोलने वाले (उस पर यूनानी संस्कृति थोप दी) बना दिया था। फलस्तीन का इलाका रोमियों के कब्जे में था जिस कारण यह सम्भावना है कि यीशु कुछ कुछ लातीनी भाषा जानता था (या कम से कम उसे समझता था) पिलातुस द्वारा यीशु से सवाल जवाब यह सवाल खड़ा करते हैं कि वे कौन सी भाषा बोलते थे। बेशक यह सम्भव है कि वे किसी अनुवादक के द्वारा बात करते थे। यदि यीशु साफ़ लातीनी भाषा नहीं बोलता था तो यह सम्भावना है कि पिलातुस ने उससे आरामी भाषा में बात की। हम बड़े आराम से यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि आरामी यीशु की ''अपनी भाषा'' तो थी पर सम्भवतया वह यूनानी और लातीनी भाषा भी जानता था।

नये नियम में यीशु के किसी औपचारिक प्रशिक्षण पाने की कोई बात नहीं मिलती। सम्भवतया उसकी शिक्षा घर में ही हुई, जैसा कि आम यहूदी परिवारों में होता था और उसने नासरत के स्थानीय आराधनालय में कुछ दीक्षा पाई होगी (लूका 4:16 संकेत देता है कि वह निरन्तर आराधनालय में जाता था)। कुछ यहूदी परिवार अपने बच्चों के लिए शिक्षक लगा देते थे, परन्तु यह मानते हुए कि यूसुफ़ एक कारोबारी था जिस कारण ऐसी सम्भावना नहीं लगती कि वह ऐसा विलासितापूर्वक खर्च उठा सकता हो। लूका 2:41-52 यीशु के केवल बारह वर्ष की आयु में व्यवस्था के सिखाने वालों के साथ मन्दिर में वार्तालाप की बात लिखता है, यह जोड़ते हुए कि ''जितने उसके सुन रहे थे, वे सब उसकी समझ और उसके उत्तरों से चकित थे'' (आयत

47)। परन्तु लूका ने इसे शिक्षा से नहीं जोड़ा परन्तु पाठक के लिए समझने के लिए छोड़ दिया होगा कि यीशु को यह परमेश्वर का पुत्र होने के कारण स्वाभाविक मिला। इस घटना के बाद लूका ने आगे जोड़ा कि यीशु ''नासरत में आया, और उन के [मरियम और यूसुफ़ के] वश में रहा'' (आयत 51)। यह इस बात का सुझाव देता है कि उसने बिल्कुल सामान्य परिस्थितियों में अपने बाल्यकाल को पूरा किया। यीशु की शिक्षा के विषय में हमें इतनी कम जानकारी होने के बावजूद, यह बहुत कम सम्भावना है, जैसा कि कुछ लोग दावा करते हैं, कि वह अनपढ़ था- विशेषकर इसलिए क्योंकि लूका उसके नासरत के आराधनालय में लोगों के सामने वचन पढ़ने की एक घटना लिखता है (4:16-20)।

नवजात के रूप में यीशु के थोड़े देर के लिए मिस्र में जाने के अपवाद के साथ हमारे पास ऐसा कोई प्रमाण नहीं है कि वह फलस्तीन में से बाहर गया और दूर-दूर कहीं गया हो।[4] इसी प्रकार से कोई ऐतिहासिक प्रमाण यह सुझाव नहीं देता कि उसका कभी विवाह हुआ हो या उसे बच्चे हुए हों। यीशु के सम्बन्ध में ऐसी कहानियां बनती रहती हैं, परन्तु हमारा ध्यान अनुमानों या मिथ्य पर नहीं बल्कि इतिहास पर है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से इन में से कोई भी बात नहीं हुई।

यह आश्चर्यजनक है कि इतनी साधारण पृष्ठभूमि में से कोई व्यक्ति जो इतने साधारण लोगों के बीच में रहता हो और अपने देश से कहीं बाहर न गया हो, को आज भी याद किया जाता है, जो इतने बडे आकर्षण का केन्द्र हो। यीशु रोमी साम्राज्य के समय में फलस्तीन में रहा और मरा भी। उसने अपने जीवन का अधिकतर समय एक आम यहूदी किसान की तरह बिताया (चाहे स्पष्ट रूप में वह किसी भी तरह आम नहीं था) और लगभग तैंतीस वर्ष की आयु में क्रूस पर चढ़ाए जाने के द्वारा मृत्यु का कष्ट सहा। इन मापदण्डों से उसका जीवन काल लम्बा नहीं था परन्तु यह बहुत ही महत्वपूर्ण था। कितना महत्वपूर्ण? आज भी हम उसी की बात कर रहे हैं!

टिप्पणियां

[1]अन्य चार इस प्रकार हैं हेरोदेस अन्तिपास (मत्ती 14:1), जिसने यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले का सिर कटवाया था; अन्तिपास का भाई फिलिपुस, जिसकी पत्नी अन्तिपास ने ब्याह ली थी, जो यूहन्ना के सिर कटवाने का कारण बनी (मरकुस 6:17); हेरोदेस अगिप्पा प्रथम (प्रेरितों 12) जिसने प्रेरित याकूब की हत्या करवाई; और हेरोदेस अग्रिप्पा द्वितीय (प्रेरितों 26), जिसने पौलुस का पक्ष सुना। [2]सहायक चर्चाएं और मानचित्र टिम डाउली, *दि क्रेगल बाइबल एटलस* (ग्रैंड रैपिड्स, मिशिगन: क्रेगल पब्लिकेशंस, 2002)। [3]कोयनि, या ''सामान्य'' यूनानी यीशु के समय बोली जाने वाली आम भाषा थी और यह इस भाषा के क्लासिकल रूप से अलग थी। क्रेग ए. इवल्स, ने ध्यान दिलाया कि सिफोरिस ने 70 ईस्वी से पूर्व यूनानी प्रभाव बाद के समय की अपेक्षा कहीं कम था। परन्तु उसने माना कि बहुत से गलील यहूदी कुछ यूनानी बोलते थे। (क्रेग ए. इवल्स, *फेब्रिकेटिंग जीज़स: हाऊ मॉडर्न स्कॉलर्स डिस्टॉर्ट द गॉस्पल्स* [डाउनर्स ग्रोव, इलिनोइस: इंटरवर्सिटी प्रैस, 2006], 113-22.)। [4]अफ़सोस कि यह लोगों को यीशु के कई भ्रमणों का बनाने का प्रयास करने से रोकता नहीं है। हाल ही का एक उदाहरण विलियम डब्ल्यू. माउंटकैसल, *द सीक्रेट मिनिस्टरी ऑफ़ जीज़स: पॉयनियर प्रॉफेट ऑफ़ इंटरफ़ेथ डॉयलॉग* (न्यू यॉर्क: यूनिवर्सिटी प्रैस ऑफ अमेरिका, 2007), जो ऐतिहासिक संदेहास्पद स्रोतों के आधार पर दावा करता है कि यीशु की भारत, तिब्त और चीन में गुप्त सेवकाई थी।